मेवाड़ की राजनीति में जैनों का योगदान अविस्मरणीय है। भामाशाह का विश्वविश्रुत समर्पण तथा अन्य अनेक जैन महामंत्रियों, वीरों और दानियों का बलिदान मेवाड़ की गौरवगाथा में वैसे ही जुड़े हैं—जैसे फूल में सौरभ।

□ **डा० देव कोठारी**
[उपनिदेशक—साहित्यसंस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर]

मेवाड़ राज्य की रक्षा में जैनियों की भूमिका

□

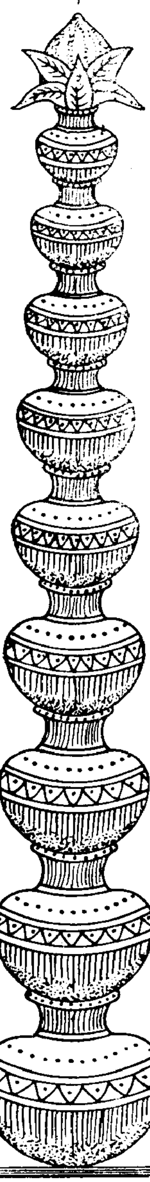

मेवाड़ में जैनधर्म के प्रादुर्भाव का प्रथम उल्लेख ईसा की पाँचवीं शताब्दी पूर्व से मिलता है। भगवान महावीर के निर्वाण के ८४ वर्ष पश्चात् ही उत्कीर्ण बड़ली[१] के शिलालेख में मेवाड़ प्रदेश की 'मज्झमिका'[२] नगरी का सन्दर्भ है। मौर्य सम्राट अशोक के पौत्र एवं अवन्ति के शासक सम्प्रति के समकालीन आचार्य आर्य सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रन्थ ने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में 'कल्पसूत्र स्थविरावली' के अनुसार जैन श्रमण संघ की 'मज्झमिआ' शाखा की यहीं स्थापना की थी।[3] मथुरा से प्राप्त प्रस्तर लेखों में भी 'मज्झमिआशाखा' के साधुओं के उल्लेख उपलब्ध होते हैं।[४] मौर्यकाल में जैन संस्कृति के सुप्रसिद्ध केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित यह मज्झमिका नगरी कालान्तर में विदेशी आक्रमणों से क्रमशः ध्वस्त होती गई,[५] किन्तु जैनधर्म अपने अस्तित्व की रक्षा एवं प्रसार के प्रयास में निरन्तर संघर्षशील रहा, परिणामस्वरूप नागरिक से लेकर शासक वर्ग तक वह विकास और श्री-वृद्धि की श्रेणियों को पार करता गया। नागदा, आहाड़, चित्तौड़गढ़, देलवाड़ा, कुंभलगढ़, जावर, धुलेव, राणकपुर, उदयपुर आदि स्थान जैन धर्म और संस्कृति के प्रसिद्ध प्रतीक बन गये। यहाँ का छोटा से छोटा गाँव भी तीर्थ सदृश पूजनीय बन गया तथा मनीषी जैन सन्तों तथा निस्पृही श्रावकों ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के द्वारा मेवाड़ को जैन धर्म, समाज एवं संस्कृति का अग्रणी केन्द्र प्रस्थापित कर दिया। विभिन्न स्थानों से प्राप्त पुरातात्त्विक एवं पुराभिलेखीय सामग्री इसका पुष्ट प्रमाण है।

मेवाड़ के धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास में जैनधर्म के अमूल्य और अतुल योगदान का तटस्थ सर्वेक्षण एवं विश्लेषणात्मक मूल्यांकन शोध का एक अलग विषय है, किन्तु जैनधर्मानुयायी श्रावकों के राजनीतिक योगदान को ही एकीकृत कर अगर लिपिबद्ध किया जाय तो मेवाड़ के इतिहास की अनेक विलुप्त शृंखलाएँ जुड़ सकती हैं।

मेवाड़ राज्य के शासकों के सम्पर्क में जैनधर्म कब आया, इस बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विक्रम संवत् ७९ में जैनाचार्य देवगुप्तसूरि तथा विक्रम संवत् २१५ में पू० यज्ञदेवसूरि का इस क्षेत्र में विचरण करने का उल्लेख उपलब्ध होता है।[६] तत्पश्चात् सिद्धसेनदिवाकर एवं आचार्य हरिभद्रसूरि के व्यापक प्रभाव के प्रमाण क्रमशः

१ द्रष्टव्य—नाहर जैन लेखसंग्रह, भाग-१, पृष्ठ ९७, लेख संख्या ४०२।
२ वर्तमान में चित्तौड़गढ से सात मील उत्तर में स्थित है। इसे अब 'नगरी' नाम से अभिहित किया जाता है।
३ (१) सेक्रीड बुक्स आव द ईस्ट, वा० २२, पृष्ठ २९३।
(२) समदर्शी आचार्य हरिभद्र सूरि, पृष्ठ ६।
४ विजयमूर्ति जैन लेखसंग्रह, भाग-२, लेख संख्या ६६।
५ (१) द्रष्टव्य—पतंजलि कृत महाभाष्य ३।२।
(२) मज्झमिका (पत्रिका) पृष्ठ २ (प्रवेशांक)।
६ सोमानी—वीरभूमि चित्तौड़गढ़, पृष्ठ १५२।

For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

विक्रम की छठी और आठवीं शताब्दी में मिलते हैं।[1] किन्तु जैनधर्म के मेवाड़ के शासकों के सम्पर्क में आने का सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण राणा भर्तृभट्ट के काल में मिलता है, जब विक्रम संवत् १००० में चैत्रपुरीय गच्छ के बूदगणि के द्वारा गुहिल विहार में आदिनाथ भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई गई।[2] उसके बाद तो भर्तृभट्ट के पुत्र अल्लट,[3] महारावल जैत्रसिंह,[4] महाराणा तेजसिंह[5], समरसिंह[6] आदि के काल में जैनधर्म यहाँ के शासकों के सीधे सम्पर्क में आया।

राजघराने के सम्पर्क में आने के पश्चात् जैनधर्म को व्यापक संरक्षण प्राप्त हुआ, फलस्वरूप जैनधर्मानुयायियों ने भी अपने बाहुबल, दूरदर्शिता, कूटनीति और प्रशासन-योग्यता के द्वारा मेवाड़ राज्य को सुरक्षा और स्थायित्व दिया ऐसे भी अवसर आये जब मेवाड़ के सूर्यवंशी गुहिल अर्थात् सिसोदिया शासकों के हाथ से शासन की बागडोर मुस्लिम शासकों के हाथ में चली गई अथवा अन्य राजनीतिक कारणों से शासन पर उनका प्रभुत्व नहीं रहा किन्तु जैनमतावलम्बी सपूतों ने खोये हुए शासन-सूत्र अपने कूटनीतिक दाँव-पेच एवं बाहुबल के माध्यम से उन्हें पुनः दिलाये। वे चाहते तो परिस्थितियों का लाभ उठाकर मेवाड़ राज्य की सत्ता को स्वयं हस्तगत कर और वीर वसुन्धरा मेवाड़ की गौरवशाली राजगद्दी पर आरूढ़ हो, अपना राज्य स्थापित कर लेते किन्तु सच्चे देशभक्त, स्वामिभक्त तथा सच्चरित्र जैन नरपुंगवों ने ऐसा नहीं किया। अपने रक्त की नदियाँ बहाकर भी वे मेवाड़ के परम्परागत राज्य को सुरक्षा, स्थायित्व एवं एकता के सूत्र में आबद्ध करने के लिए प्राण-प्रण से संघर्षशील रहे।

अहिंसा के पुजारी होने के कारण यद्यपि जैनियों पर कायर व धर्मभीरु होने के लांछन लगाये जाते रहे हैं। एक व्यापारिक, सूदखोर तथा सैनिक गुणों से रिक्त होने का आरोप उन पर मढ़ा जाता रहा है, किन्तु यह सब नितान्त एकपक्षीय और अज्ञानता से युक्त है। समय-समय पर तत्कालीन शासकों द्वारा उन्हें दिये गये पट्टे-परवाने, रुक्के, ताम्र-पत्र इसके प्रमाण हैं। शिलालेख, काव्य-ग्रन्थ, ख्यात, वात, वंशावलियाँ, डिंगल गीत आदि इस तथ्य व सत्य के प्रबल सन्दर्भ हैं।

मेवाड़ राज्य की रक्षा में जैनियों ने शासन-प्रबन्ध के विभिन्न पदों पर रहकर अपने दायित्वों का निर्वाह किया। इनमें प्रधान, दीवान, फौजबक्षी, मुत्सद्दी, हाकिम, कामदार एवं अहलकार पद प्रमुख हैं। इन पदों पर जैन समाज की विभिन्न जातियों के व्यक्ति कार्यरत थे, जिनमें मेहता, कावड़िया, गांधी, बोलिया, गलूंडिया, कोठारी आदि सम्मिलित हैं। मेवाड़ राज्य की रक्षार्थ इनमें से अनेक जैनियों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। प्रत्येक का विवरण प्रस्तुत करना निबन्ध की कलेवर सीमा के कारण सम्भव नहीं है। यहाँ कतिपय प्रमुख जैन विभूतियों का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन ही दिया जा रहा है—

जालसी मेहता—अलाउद्दीन खिलजी से हुए युद्ध और महारानी पद्मिनी के जौहर के पश्चात् गुहिलवंशी शासकों के हाथ से चित्तौड़ निकल गया और उस पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। उसने पहले खिज्रखाँ को चित्तौड़ पर नियुक्त किया किन्तु बाद में जालौर के मालदेव सोनगरा को चित्तौड़ का दुर्ग सुपुर्द कर दिया। ऐसी विषम स्थिति में विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में जालसी मेहता मेवाड़ राज्य के प्रथम उद्धारक एवं अनन्य स्वामीभक्त के रूप में प्रकट होता है।

अलाउद्दीन से हुए इस भयंकर युद्ध में सिसोदे गाँव का स्वामी हमीर ही गुहिलवंशी शासकों का एकमात्र प्रतिनिधि जीवित बच गया था। हमीर अपने पैतृक दुर्ग चित्तौड़ को पुनः हस्तगत करने के लिए लालायित था, इसी उद्देश्य से वह मालदेव के अधीनस्थ प्रदेश को लूटने व उजाड़ने लगा। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् जब दिल्ली

---

१ (१) जैन संस्कृति और राजस्थान, पृष्ठ १२७-२८।
(२) वीरभूमि चित्तौड़गढ़, पृष्ठ ११२-१५।
२ जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ७, (दीपोत्सवांक), पृष्ठ १४६-४७।
३ डा० कैलाशचन्द्र जैन (जैनिज्म इन राजस्थान), पृष्ठ २९।
४ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ १९३।
५ एन्युअल रिपोर्ट आफ दि राजपूताना म्युजियम, अजमेर (१९२२-२३), पृष्ठ ८।
६ वही, पृष्ठ ९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सल्तनत की सत्ता कमजोर होने लगी तो मालदेव ने उधर से किसी भी प्रकार की सैनिक मदद की आशा न देख, उसने अपनी पुत्री का विवाह हमीर से कर दिया ताकि वह उसके अधीनस्थ मेवाड़ को लूटना व उजाड़ना बन्द कर दे। हमीर ने अपनी नवविवाहिता पत्नी की सलाह से विवाह के इस शुभ अवसर पर कोई जागीर या द्रव्य नहीं माँग कर मालदेव से उसके दूरदर्शी कामदार जालसी मेहता को माँग लिया, ताकि जालसी के सहयोग से हमीर की मनोकामना पूरी हो सके।[1]

हमीर की इस राणी से क्षेत्रसिंह[2] नामक पुत्र हुआ। ज्योतिषियों की सलाह के अनुसार चित्तौड़गढ़ के क्षेत्रपाल की पूजा (बोलवां) के निमित्त महारानी को अपने पुत्र क्षेत्रसिंह के साथ चित्तौड़ जाना पड़ा।[3] इस अवसर पर जालसी मेहता भी साथ में था। मालदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जैसा सोनगरा चित्तौड़ का शासक था। जालसी मेहता ने सम्पूर्ण स्थिति का अवलोकन करके कूटनीति एवं दूरदर्शिता से वहाँ के सामन्त-सरदारों को जैसा सोनगरा के विरुद्ध उभारना आरम्भ किया। जब उसे विश्वास हो गया कि चित्तौड़ का वातावरण हमीर के पक्ष में है तो हमीर को गुप्त सन्देश भेजकर विश्वस्त सैनिकों के साथ उसे चित्तौड़ बुलाया। योजनानुसार किले का दरवाजा खोल दिया गया और घमासान युद्ध के पश्चात् हमीर का चित्तौड़ पर अधिकार हो गया।[4] इस प्रकार जालसी के सम्पूर्ण सहयोग से हमीर वि० सं० १३८३ में मेवाड़ का महाराणा बना और उसके बाद देश के स्वतन्त्र होने तक मेवाड़ पर सिसोदे[5] के इस हमीर के वंशजों का ही आधिपत्य रहा, जिसमें महाराणा कुंभा, सांगा, प्रताप और राजसिंह जैसे महान प्रतापी व इतिहास प्रसिद्ध शासक हुए। जालसी मेहता की इस स्वामीभक्ति, कूटनीति एवं दूरदर्शिता से प्रभावित होकर महाराणा हमीर ने उसे अच्छी जागीर दी, सम्मान दिया तथा उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।[6]

रामदेव एवं सहनपाल

महाराणा हमीर के बाद क्रमशः क्षेत्रसिंह (वि० सं० १४२१-१४३९) एवं लक्षसिंह अर्थात् लाखा (वि० सं० १४३९–१४५४) मेवाड़ के महाराणा बने। इनके राज्यकाल में देवकुलपाटक (देलवाड़ा) निवासी नवलखा लाधु का पुत्र रामदेव मेवाड़ का राज्यमन्त्री था।[7] इसकी पत्नी का नाम मेलादेवी था, जिसके दो पुत्र क्रमशः सहण एवं सारंग थे। महाराणा मोकल (सं० १४५४–१४९०) एवं महाराणा कुम्भा के राज्यकाल (वि० १४९०–१५२५) में इसका पुत्र सहणपाल राज्यमन्त्री था। इसे शिलालेखों में 'राजमन्त्री धुराधौरयः' के सम्बोधन से सम्बोधित किया गया है। तत्कालीन जैनाचार्य ज्ञानहंसगणि कृत 'सन्देह दोहावली' की प्रशस्ति में इसकी प्रशंसा की गई है।[8] रामदेव एवं सहणपाल का लम्बे समय तक मेवाड़ का राज्यमन्त्री रहना निश्चित ही उनके दूरदर्शी व कुशल व्यक्तित्व के कारण सम्भव हुआ होगा। मेवाड़ में जैनधर्म के उत्थान में दोनों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया था। जिसका उल्लेख कई शिलालेखों एवं हस्तलिखित ग्रन्थों में मिलता है।

---

१ (क) कर्नल जेम्स टाड—एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज आव राजस्थान (हि० सं०) पृष्ठ १५९।
(ख) कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ २९५ पर जालसी का नाम मौजीराम मेहता दिया है, जिसे गो० ही० ओझा ने अशुद्ध बताया है, द्रष्टव्य—ओझा कृत 'राजपूताने का इतिहास', प्रथम भाग, पृष्ठ ५०६।

२ जो हमीर के बाद मेवाड़ का शासक बना और महाराणा खेता के नाम ने प्रसिद्ध हुआ।

३ बाबू रामनारायण दूगड़—मेवाड़ का इतिहास, प्रकरण चौथा, पृष्ठ ६८।

४ एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आव राजस्थान (हिन्दी), पृष्ठ १५९-६०।

५ हमीर, सिसोदे गाँव का रहने वाला था, इसी कारण गुहिलवंशी शासक हमीर के समय से ही सिसोदिया कहलाए।

६ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृष्ठ १३२४।

७ श्री रामवल्लभ सोमानी कृत (अ) महाराणा कुंभा, पृष्ठ ३०५।
(ब) वीरभूमि चित्तौड़, पृष्ठ १६१।

८ (अ) वही, पृष्ठ १५८, १५९ व ३०५ एवं
(ब) वही, पृष्ठ १६२।

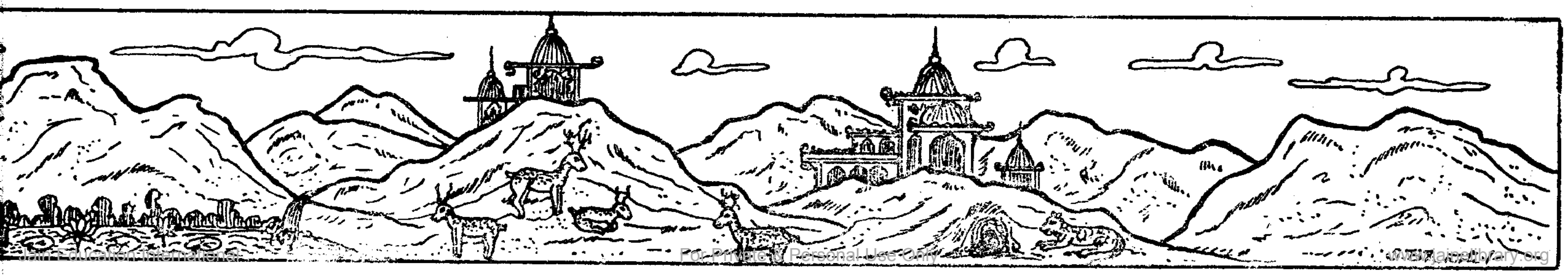

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोलाशाह एवं कर्माशाह

तोलाशाह महाराणा सांगा (वि० सं० १५६६-१५८४) के समय मेवाड़ का दीवान था।[1] इस पर महाराणा सांगा का पूर्ण विश्वास था और वह उसका मित्र भी था।[2] महाराणा सांगा द्वारा किये गये मेवाड़ राज्य के विस्तार में तोलाशाह के अविस्मरणीय योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। तोलाशाह का पुत्र कर्माशाह महाराणा रत्नसिंह द्वितीय (वि० सं १५८४–१५८८) का मन्त्री था।[3] रत्नसिंह के अल्प शासनकाल में कर्माशाह के कार्यों का संक्षिप्त परिचय शत्रुंजय तीर्थ के शिलालेख[4] में मिलता है।

मेहता चीलजी

जालसी मेहता का वंशज मेहता चीलजी महाराणा सांगा के समय से ही चित्तौड़गढ़ का किलेदार था।[5] उस काल में स्वामीभक्त एवं वीर प्रकृति के दूरदर्शी योद्धा को ही किलेदार बनाया जाता था। बनवीर (वि० सं० १५९३–१५९७) के समय में भी यही किलेदार था, किन्तु इसे बनवीर का चित्तौड़ पर आधिपत्य खटक रहा था। उधर महाराणा उदयसिंह (वि० सं० १५९४–१६२८) अपने पैतृक अधिकारों एवं दुर्ग को प्राप्त करने के लिए तैयारी कर रहे थे। अवसर देखकर चीलजी मेहता एवं कुम्भलगढ़ का किलेदार आशा देपुरा[6] के मध्य उदयसिंह को चित्तौड़ वापस दिलाने का गुप्त समझौता हो गया। योजनानुसार चीलजी ने बनवीर को सुझाव दिया कि "किले में खाद्य-सामग्री कम है, रात्रि में किले का दरवाजा खोलकर मँगाना चाहिए।" बनवीर ने स्वीकृति दे दी। एक दिन रात्रि को किले का दरवाजा खोल दिया गया, कुछ बैलों एवं भैंसों पर सामान लादकर उदयसिंह कुछ सैनिकों के साथ किले में घुस आया। छुटपुट लड़ाई के बाद महाराणा उदयसिंह का किले पर अधिकार हो गया।[7] चीलजी मेहता की इस सूझ-बूझ एवं कूटनीति के परिणामस्वरूप ही चित्तौड़ अर्थात् मेवाड़ पर उसके वास्तविक अधिकारी उदयसिंह का अधिकार हो सका।

कावड़िया भारमल

प्रसिद्ध योद्धा कावड़िया भारमल व उसके पूर्वज अलवर के रहने वाले थे। महाराणा सांगा भारमल की सैनिक योग्यता एवं राजनीतिक दूरदर्शिता से काफी प्रसन्न थे। इसी कारण उसे तत्कालीन सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रणथम्भौर के किले का किलेदार नियुक्त किया।[8] बाद में जब बूंदी के हाड़ा सूरजमल को रणथंभौर की किलेदारी मिली,[9] उस समय भी भारमल के हाथ में एतबारी नौकरी और किले का कुल कारोबार रहा।[10] यह महाराणा की उस पर विश्वसनीयता का द्योतक था। महाराणा उदयसिंह ने भारमल की सेवाओं से प्रसन्न होकर वि० सं० १६१० में उसे

---

१ ओसवाल जाति का इतिहास, पृष्ठ ७०।
२ राजस्थान भारती (त्रैमासिक) भाग-१२, अंक-१, पृष्ठ ५३-५४ पर श्री रामवल्लभ सोमानी का लेख—'शत्रुंजय तीर्थोद्धार प्रबन्ध में ऐतिहासिक सामग्री'।
३ ओझा—राजपूताने का इतिहास, भाग-२, पृष्ठ ७०३।
४ एपिग्राफिया इन्डिका, भाग-२, पृष्ठ ४२-४७।
५ कविराजा श्यामलदास—वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ ६४।
६ आशा देपुरा माहेश्वरी जाति का था एवं महाराणा सांगा के समय से ही कुंभलगढ़ का किलेदार था। (द्रष्टव्य—वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ ६२)।
७ वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ ६४।
८ वही, पृष्ठ २५२।
९ ओझा—राजपूताने का इतिहास, भाग-२, पृष्ठ ६७२ एवं १३०२।
१० वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ २५२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना प्रमुख सामन्त बनाया और एक लाख का पट्टा दिया।[1] इस प्रकार एक किलेदार के पद से सामन्त के उच्च पद पर पहुँचना भारमल की सैनिक योग्यता, चातुर्य एवं स्वामिभक्ति का प्रमाण था।[2]

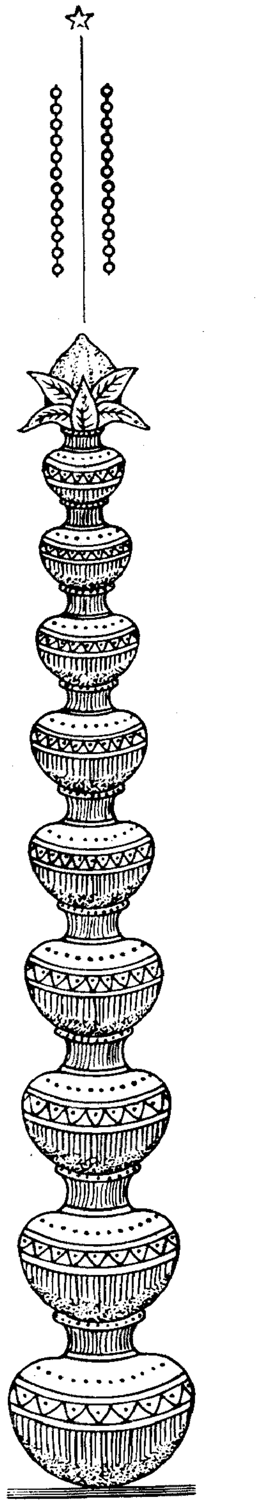

भामाशाह एवं ताराचन्द

ये दोनों भाई कावड़िया भारमल के पुत्र थे। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप (वि० सं० १६२८-१६५३) की सेना के हरावल के दाहिने भाग की सेना का नेतृत्व करते हुए लड़े थे एवं अकबर की सेना को शिकस्त दी थी।[3] भामाशाह की राजनैतिक एवं सैनिक योग्यता को देखकर महाराणा प्रताप ने उसे अपना प्रधान बनाया। इसने प्रताप की सैनिक टुकड़ियों का नेतृत्व करते हुए गुजरात, मालवा, मालपुरा आदि इलाकों पर आक्रमण किये एवं लूटपाट कर प्रताप को आर्थिक सहायता की।[4] लूटपाट के प्राप्त धन का ब्यौरा वह एक बही में रखता था और उस धन से राज्य खर्च चलाता था। उसके इस दूरदर्शी एवं कुशल आर्थिक प्रबन्ध के कारण ही प्रताप इतने लम्बे समय तक अकबर के शक्तिशाली साम्राज्य से संघर्ष कर सके थे। महाराणा अमरसिंह (वि० सं० १६५३-१६७६) के राज्यकाल में भामाशाह तीत वर्ष तक प्रधान पद पर रहा और अन्त में प्रधान पद पर रहते हुए ही इसकी मृत्यु हुई।

ताराचन्द भी एक कुशल सैनिक एवं अच्छा प्रशासक था। यह भी मालवा की ओर प्रताप की सेना लेकर शत्रुओं को दबाने एवं लूटपाट कर आतंक पैदा करने के लिए गया था। पुनः मेवाड़ की ओर लौटते हुए उसे व उसके साथ के सैनिकों को अकबर के सेनापति शाहबाज खां व उसकी सेना ने घेर लिया। ताराचन्द इनसे लड़ता हुआ बस्सी (चित्तौड़ के पास) तक आया किन्तु यहाँ वह घायल होकर गिर पड़ा। बस्सी का स्वामी देवड़ा साईंदास इसे अपने किले में ले गया, वहाँ घावों की मरहम पट्टी की एवं इलाज किया।[5] प्रताप ने ताराचन्द को गोड़वाड़ परगने में स्थित सादड़ी गाँव का हाकिम नियुक्त किया, जहां रहकर इसने नगर की ऐसी व्यवस्था की कि शाहबाज खाँ जैसा खूँखार योद्धा भी नगर पर कब्जा न कर सका। इसी तरह नाडौल की ओर से होने वाले अकबर की सेना के आक्रमणों का भी वह बराबर मुकाबला करता रहा।[6] सादड़ी में इसने अनेक निर्माण कार्य कराये एवं प्रसिद्ध जैन मुनि हेमरत्नसूरि से 'गोरा बादल पद्मिनी चउपइ' की रचना कराई।[7]

जीवाशाह

भामाशाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र कावड़िया जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह (वि० सं० १६५३-१६७६) ने प्रधान पद पर नियुक्त किया।[8] यह भामाशाह द्वारा लिखी हुई बही के अनुसार गुप्त स्थानों से धन निकाल-निकाल कर सेना का व राज्य का खर्च चलाता था।[9] बादशाह जहाँगीर से जब अमरसिंह की सुलह हो गई, उसके बाद

---

१ (अ) 'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ' में श्री बलवन्तसिंह मेहता का लेख—'कर्मवीर भामाशाह', पृष्ठ ११४।
(ब) 'ओसवाल जाति का इतिहास' में पृष्ठ ७२ पर भारमल को महाराणा उदयसिंह द्वारा प्रधान बनाने का उल्लेख है।

२ भारमल की योग्यता एवं महत्ता का प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि उस समय चित्तौड़ किले की पाड़नपोल के सामने उसकी हस्तीशाला थी एवं किले पर बहुत बड़ी हवेली थी। (द्रष्टव्य—प्रताप स्मृति ग्रन्थ—पृष्ठ ११४)।

३ 'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ' में श्री बलवन्तसिंह मेहता का लेख—'कर्मवीर भामाशाह', पृ० ११४।

४ वही, पृ० ११५।

५ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० १३०३।

६ मरूधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ में श्री रामवल्लभ सोमानी का लेख—'दानवीर भामाशाह का परिवार, पृ० १७५-७६।

७ द्रष्टव्य—हेमरत्नसूरि कृत—'गोरा बादल पद्मिनी चउपई' की प्रशस्ति।

८ वीर विनोद, भाग-२, पृ० २५१।

९ (अ) वीर विनोद, भाग-२, पृ० २५१। (ब) ओझा—राजपूताने का इतिहास, भाग-२, पृ० १३३।

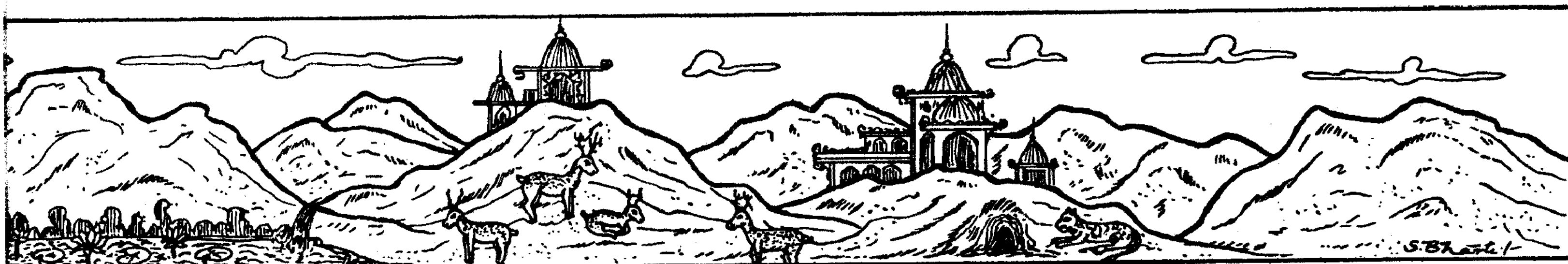

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुँवर कर्णसिंह के साथ जीवाशाह को भी बादशाह के पास अजमेर भेजा गया ।[1] ताकि वह मेवाड़ के स्वाभिमान व राजनीतिक स्थिति का ध्यान रख कर तद्नुकूल कुँवर कर्णसिंह का मार्गदर्शन कर सके ।

रंगोजी बोलिया

महाराणा अमरसिंह की राज्य सेवा में नियुक्त रंगोजी बोलिया ने अमरसिंह एवं बादशाह जहाँगीर के मध्य प्रसिद्ध सन्धि कराने में प्रमुख भूमिका निभाई तथा मेवाड़ एवं मुगल साम्राज्य के बीच चल रहे लम्बे संघर्ष को सम्मान-जनक ढंग से बन्द कराया । सन्धि सम्पन्न हो जाने के बाद महाराणा अमरसिंह ने प्रसन्न होकर रंगोजी को चार गाँव, हाथी, पालकी आदि भेंट दिये व मंत्री पद पर आसीन किया । इस पद पर रहते हुए इसने मेवाड़ के गाँवों का सीमांकन कराया और जागीरदारों के गाँवों की रेख भी निश्चित की । जहाँगीर ने भी प्रसन्न होकर रंगोजी को ५३ बीघा जमीन देकर सम्मानित किया ।[2] रंगोजी ने मेवाड़ एवं मुगल साम्राज्य के मध्य संधि कराने में जो भूमिका निभाई, उस सन्दर्भ में डिंगल गीत तथा हस्तलिखित सामग्री डॉ० ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर) के निजी संग्रह में विद्यमान है ।

अक्षयराज

भामाशाह के पुत्र जीवाशाह की मृत्यु के बाद जीवाशाह के पुत्र कावड़िया अक्षयराज को महाराणा कर्णसिंह (वि० सं० १६७६-१६८४) ने मेवाड़ राज्य का प्रधान बनाया ।[3] महाराणा जगतसिंह (वि० सं० १६८४-१७०९) के शासनकाल में अक्षयराज के नेतृत्व में सेना देकर डूंगरपुर के स्वामी रावल पूंजा को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार कराने के लिए भेजा गया, क्योंकि डूंगरपुर के स्वामी महाराणा प्रताप के समय से ही शाही अधीनता में चले गये थे । अक्षयराज का ससैन्य डूंगरपुर पहुँचने पर रावल पूंजा पहाड़ों में भाग गया । अक्षयराज की आज्ञा से सेना ने डूंगरपुर शहर को लूटा, नष्ट-भ्रष्ट किया एवं रावल पूंजा के महलों को गिरा दिया ।[4]

सिंघवी दयालदास

यह मेवाड़ के प्रसिद्ध व्यापारी संघवी राजाजी एवं माता रयणादे का चतुर्थ पुत्र था । एक बार महाराणा राजसिंह (वि० सं० १७०९-१७३७) की एक राणी ने अपने पति (महाराणा राजसिंह) की हत्या करवा कर अपने पुत्र को मेवाड़ का महाराणा बनाने का षड़यन्त्र रचा । षड़यन्त्र का एक कागज दयालदास को मिल गया । उसने तत्काल महाराणा राजसिंह से सम्पर्क कर उनकी जान बचाई । दयालदास की इस वफादारी से प्रसन्न होकर महाराणा ने इसे अपनी सेवा में रखा तथा अपनी योग्यता से बढ़ते-बढ़ते यह मेवाड़ का प्रधान बन गया ।[5] जब औरंगजेब ने वि० सं० १७३६ में मेवाड़ पर चढ़ाई कर सैकड़ों मन्दिर तुड़वा दिये[6] और बहुत आर्थिक नुकसान पहुँचाया तो इस घटना के कुछ समय पश्चात् महाराणा राजसिंह ने इसको बहुत-सी सेना देकर बदला लेने के लिए मालवा की ओर भेजा, दयालदास ने अचानक धार नगर पर आक्रमण कर उसे लूटा, मालवे के अनेक शाही थानों को नष्ट किया, आग लगाई और उनके स्थान पर मेवाड़ के थाने बिठा दिये । लूट से प्राप्त धन को प्रजा में बाँटा एवं बहुत-सी सामग्री ऊँटों पर लाद कर सकुशल मेवाड़ लौट आया[7] तथा महाराणा को नजर की ।

---

१ (अ) वीर विनोद, भाग-२, पृष्ठ २५१ । (ब) ओझा—राजपूताने का इतिहास भाग-२, पृष्ठ १३३ ।

२ वरदा (त्रैमासिक) भाग-१२, अंक ३, पृष्ठ ४१-४७ पर प्रकाशित डा० ब्रजमोहन जावलिया का लेख—'बादशाह जहाँगीर और महाराणा अमरसिंह की सन्धि के प्रमुख सूत्रधार—रंगोजी बोलिया ।'

३ (अ) वीर विनोद, भाग-२, पृष्ठ २५१ (ब) ओझा—राजपूताने का इतिहास भाग-२, पृष्ठ १३३ ।

४ (अ) रणछोड़भट्ट कृत राजप्रशस्ति : महाकाव्यम्, सर्ग ५, श्लोक १८१६ ।
(ब) जगदीश मन्दिर की प्रशस्ति, श्लोक सं० ५४ ।

५ ओझा—राजपूताने का इतिहास, भाग-२, पृष्ठ १३०५ ।

६ वही, पृष्ठ ८७०-७१ ।

७ जती मान-कृत राजविलास (महाकाव्य), विलास-७, छन्द ३८ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाराणा जयसिंह (वि० सं० १७३७-१७५५) के शासनकाल में वि० सं० १७३७ में चित्तौड़गढ़ के पास शाहजादा आजम एवं मुगल सेनापति दिलावर खाँ की सेना पर रात्रि के समय दयालदास ने भीषण आक्रमण किया, किन्तु मुगल सेना संख्या में अधिक थी, दयालदास बड़ी बहादुरी से लड़ा परन्तु जब उसने देखा कि उसकी विजय सम्भव नहीं है तो मुसलमानों के हाथ पड़ने से बचाने के लिए अपनी पत्नी को अपने ही हाथों तलवार से मौत के घाट उतार दिया और उदयपुर लौट आया, फिर भी उसकी एक लड़की, कुछ राजपूत तथा बहुत-सा सामान मुसलमानों के हाथ लग गया।[१] मेवाड़ की रक्षा के खातिर अपने परिवार को ही शहीद कर देने वाले ऐसे वीर पराक्रमी, महान देशभक्त, स्वामिभक्त तथा कुशल प्रशासक दयालदास की योग्यता, वीरता एवं कूटनीतिज्ञता का विस्तृत वर्णन राजपूत इतिहास के ग्रन्थों के अतिरिक्त फारसी भाषा के समकालीन ग्रन्थों, यथा—'वाकया सरकार रणथम्भौर' एवं 'औरंगजेबनामा' में भी मिलता है। जैनधर्म के उत्थान में भी दयालदास द्वारा सम्पन्न किये गये महान् कार्यों का विशाल वर्णन जैन हस्तलिखित ग्रन्थों व शिलालेखों में उपलब्ध होता है।[२]

शाह देवकरण

महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय (वि० सं० १७६७-९०) के शासनकाल में देवकरण आर्थिक मामलों का मुत्सद्दी था। इसके पूर्वज बीकानेर के रहने वाले डागा जाति के महाजन थे। एक बार महाराणा ने ईडर के परगने में तथा डूँगरपुर व बाँसवाड़ा के इलाके के भील व मेवासी लोगों में फैल रही अशान्ति को दबाने के लिए सेना के साथ इसे भेजा। देवकरण ने ईडर पर आक्रमण कर उस पर कब्जा कर लिया तथा वहाँ से पौने पाँच लाख रुपये का खजाना महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के पास भेजा। मेवासी व भील लोगों को भी दबाया।[3] डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, देवलिया एवं रामपुरा के शासकों को भी मेवाड़ की अधीनता मेवाड़ के तत्कालीन प्रधान पंचोली बिहारीदास के साथ रहकर स्वीकार करवाई।[४] वि० सं० १७७५ में मेवाड़ में भयंकर अकाल पड़ा, उस समय भी देवकरण एवं उसके भाइयों ने महाराणा का काफी सहयोग किया।[५]

मेहता अगरचन्द

महाराणा अरिसिंह द्वितीय (वि० सं० १८१७-२९) का शासनकाल मेवाड़ के इतिहास में गृहकलह तथा संघर्ष का काल माना जाता है। ऐसे संकटमय समय में मेहता पृथ्वीराज के सबसे बड़े पुत्र मेहता अगरचन्द ने मेवाड़ राज्य की जो सेवाएँ कीं, वे अद्वितीय हैं। अगरचन्द की दूरदर्शिता, कार्यकुशलता तथा सैनिक गुणों से प्रभावित होकर महाराणा अरिसिंह ने इसे मांडलगढ़ (जिला भीलवाड़ा) जैसे सामरिक महत्त्व के किले का किलेदार एवं उस जिले का हाकिम नियुक्त किया।[६] इसकी योग्यता को देखकर इसे महाराणा ने अपना सलाहकार तथा तत्पश्चात् दीवान के पद पर आरूढ़ किया और बहुत बड़ी जागीर देकर सम्मानित किया। मेवाड़ इस समय मराठों के आक्रमणों से त्रस्त तथा विषम आर्थिक स्थिति से ग्रस्त था। अगरचन्द ने अपनी प्रशासनिक योग्यता व कूटनीति के बाल पर इन विकट परिस्थि-

---

१ (अ) वीर विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६५०।
(ब) ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ८९५।

२ (अ) राजसमन्द की पहाड़ी पर इसने आदिनाथ का विशाल जैन मन्दिर बनवाया था। दयालशाह के किले के नाम से वह आज भी प्रसिद्ध है।
(ब) द्रष्टव्य—बड़ोदा के पास छाणी गाँव के जिनालय का शिलालेख।
(स) जती मान को भी महाराणा राजसिंह से इसने कुछ गाँव दान में दिलवाये।

३ द्रष्टव्य—शोध पत्रिका, वर्ष १९, अंक २, पृ० २९-३५ पर प्रकाशित मेरा लेख—'गुणमाल शाह देवकरण री'।

४ (अ) वही, पृ० २९-३५ (ब) वीर विनोद, भाग-२, पृ० १०१०।

५ शोध पत्रिका, वर्ष १९, अंक २, पृ० २९-३५ पर प्रकाशित उपर्युक्त लेख।

६ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० १३१४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तियों पर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की।[1] महाराणा अरिसिंह की माधवराव सिन्धिया के साथ उज्जैन में हुई लड़ाई में अगरचन्द वीरतापूर्वक लड़ता हुआ घायल हुआ एवं कैद कर लिया गया। बाद में रूपाहेली के ठाकुर शिवसिंह द्वारा भेजे गये बावरियों ने उसे छुड़वाया। माधवराव सिन्धिया द्वारा उदयपुर को घेरने के समय तथा टोपलमगरी व गंगार की लड़ाइयों में भी अगरचन्द महाराणा के साथ रहा। अरिसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा हमीरसिंह द्वितीय (वि० सं १८२९-३४) के समय मेवाड़ की विकट स्थिति संभालने में यह बड़वा अगरचन्द के साथ रहा। महाराणा भीमसिंह (वि० सं० १८३४-८५) ने इसे प्रधान के पद पर नियुक्त किया। अम्बाजी इंगलिया के प्रतिनिधि गणेशपन्त के साथ मेवाड़ की हुई विभिन्न लड़ाइयों में भी अगरचन्द ने भाग लिया।[2] अमरचन्द द्वारा मेवाड़ के महाराणाओं एवं लम्बे समय तक मेवाड़ राज्य के लिए की गई सेवाओं से प्रसन्न होकर उपर्युक्त तीनों महाराणाओं ने समय-समय पर अगरचन्द को विभिन्न रुक्के प्रदान किये, उनसे एवं मराठों, मेवाड़ के महाराणाओं एवं अन्य शासकों से हुए उसके पत्र व्यवहार से तथा 'मेहताओं की तवारीख' से अगरचन्द के सैनिक व राजनीतिक योगदान और मेवाड़ राज्य की रक्षा हेतु उसकी कुर्बानी की पुष्टि होती है।

सोमचन्द गाँधी

महाराणा भीमसिंह (वि० सं० १८३४-८५) का शासनकाल मेवाड़ राज्य में भयंकर उथल-पुथल एवं अराजकता के काल के रूप में प्रसिद्ध है। एक ओर मराठों के आक्रमणों से मेवाड़ त्रस्त था तो दूसरी ओर मेवाड़ के अनेक सामन्त-सरदार महाराणा से बागी हो गये थे। चूंडावतों एवं शक्तावतों के मध्य भी पारस्परिक वैमनस्य चरम सीमा पर पहुँच गया था। राज्य कार्य में चूंडावतों का प्रभावी दखल था। सलूम्बर का रावत भीमसिंह, कुराबड़ का रावत अर्जुनसिंह तथा आमेट का रावत प्रतापसिंह महाराणा भीमसिंह के पास रहकर राजकाज देखते थे।[3]

इन विषम परिस्थितियों में राजकोष भी एकदम रिक्त था। राज्य प्रबन्ध एवं अन्य साधारण खर्च भी कर्ज लेकर चलाना पड़ता था। वि० सं० १८४१ में महाराणा के जन्मोत्सव पर रुपयों की आवश्यकता हुई। राजमाता ने उपर्युक्त तीनों चूंडावत सरदारों से इसका प्रबन्ध करने के लिए कहा किन्तु इन्होंने टालमटूल की, फलस्वरूप राजमाता काफी अप्रसन्न हुई।[4]

सोमचन्द गांधी इस समय जनानी ड्योढ़ी पर नियुक्त था। अनुकूल स्थिति देखकर रामप्यारी के माध्यम से उसने राजमाता को कहलाया कि अगर उसे राज्य का प्रधान बना दिया जाय तो वह जन्मोत्सव के लिए रुपयों का प्रबन्ध कर सकता है। राजमाता ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उसे प्रधान बना दिया। सोमचन्द ने शक्तावत सरदारों से मेलजोल बढ़ाया एवं रुपयों का प्रबन्ध कर दिया।[5]

प्रधान बनते ही सोमचन्द का दायित्व बढ़ गया। वह अत्यन्त योग्य, नीति-निपुण एवं कार्यकुशल व्यक्ति था। सबसे पहले उसने मेवाड़ के सरदारों के मध्य व्याप्त आपसी वैमनस्य को समाप्त करने का निश्चय किया। कई असन्तुष्ट सरदारों को खिलअत व सिरोपाव आदि भेजकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया। कोटा का झाला जालिमसिंह उस समय राजस्थान की राजनीति में सर्वाधिक प्रभावशाली था, सोमचन्द ने बुद्धिमानी से काम लेकर उसे अपनी ओर मिला लिया।[6] भीण्डर का स्वामी शक्तावत मोहकमसिंह पिछले बीस वर्षों से मेवाड़ के शासकों के विरुद्ध चल रहा था, सोमचन्द की सलाह पर महाराणा स्वयं भीण्डर गये, उस समय झाला जालिमसिंह भी पाँच हजार की फौज लेकर भीण्डर पहुँच गया और मोहकमसिंह को समझाकर उदयपुर ले आये।[7] मेवाड़ को शोचनीय स्थिति से उबारने के लिए

---

१ शोध पत्रिका, वर्ष १८, अंक २, पृ० ८१-८२।
२ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, (उदयपुर), पृ० १३१४-१५।
३ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० ६८३।
४ वीर विनोद, भाग २, पृ० १७०६।
५ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० ६८५।
६ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ६८५।
७ वीर विनोद, भाग-दो, पृ० १७०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमचन्द द्वारा किये जा रहे इन प्रयासों से चूँडावत नाराज हो गये क्योंकि इन घटनाओं से उनका मेवाड़ की राजनीति में दखल कम हो गया था।

मराठों के उपद्रवों को रोकने और उनके द्वारा मेवाड़ के छीने गये भाग को वापस प्राप्त करने के लिए सोमचन्द ने एक योजना बनाई, किन्तु इसकी पूर्ण सफलता के लिए चूंडावतों का सहयोग आवश्यक था, अतः उसने रामप्यारी को भेजकर सलूम्बर से भीमसिंह को उदयपुर बुलवाया।[1] इधर सोमचन्द ने जयपुर, जोधपुर आदि के महाराजाओं को मराठों के विरुद्ध तैयार किया। जयपुर व जोधपुर के सम्मिलित सहयोग से वि० सं० १८४४ की लालसोट की लड़ाई में मराठे पराजित हो गये।[2] इस अवसर का लाभ उठाकर सोमचन्द ने मेहता मालदास की अध्यक्षता में मेवाड़ एवं कोटा की संयुक्त सेना मराठों के विरुद्ध भेजी। इस तरह निम्बाहेड़ा, निकुम्भ, जीरण, जावद, रामपुरा आदि भागों पर पुनः मेवाड़ का अधिकार हो गया।[3]

इधर सोमचन्द का ध्यान मेवाड़ के उद्धार में व्यस्त था तो उधर मेवाड़ की राजनीति में शक्तावतों का प्रभाव बढ़ जाने से चूँडावत, सोमचन्द से अन्दर ही अन्दर नाराज थे। ऊपर से वे उसके साथ मित्रवत् रहते थे किन्तु अन्तःकरण से उसे मार डालने का अवसर देख रहे थे। वि० सं० १८४६ की कार्तिक सुदि ६ को कुरावड़ का रावत अर्जुनसिंह और चांवड का रावत सरदारसिंह किसी कारणवश महलों में गये, सोमचन्द उस समय अकेला था, दोनों ने बात करने के बहाने सोमचन्द के पास जाकर कटार घोंप कर उसकी हत्या कर दी।[4] इस प्रकार अटल राजभक्त, लोकप्रिय, दूरदर्शी, नीति-निपुण एवं मेवाड़ राज्य का सच्चा उद्धारक सोमचन्द शहीद हो गया। बाद में उसके भाई सतीदास तथा शिवदास गांधी ने अपने भाई की हत्या का बदला लिया।[5]

मेहता मालदास

मराठों के विरुद्ध मेवाड़ की सेना का नेतृत्व करने के सन्दर्भ में मेहता मालदास का उल्लेख ऊपर आ चुका है। इसे ड्योढ़ी वाले मेहता वंश में मेहता मेघराज की ग्यारहवीं पीढ़ी में एक कुशल योद्धा, वीर सेनापति एवं साहसी पुरुष के रूप में मेवाड़ के इतिहास में सदा स्मरण किया जायेगा।[6] महाराणा भीमसिंह के राज्यकाल में मराठों के आतंक को समाप्त करने के लिए प्रधान सोमचन्द गान्धी ने जब मराठों पर चढ़ाई करने का निर्णय लिया तो इस अभियान के दूरगामी महत्त्व को अनुभव कर मेवाड़ एवं कोटा की संयुक्त सेना का सेनापतित्व मेहता मालदास को सौंपा गया। उदयपुर से कूच कर यह सेना निम्बाहेड़ा, निकुम्भ, जीरण आदि स्थानों को जीतती और मराठों को परास्त करती हुई जावद पहुँची, जहाँ पर नाना सदाशिवराव ने पहले तो इस संयुक्त सेना का प्रतिरोध किया किन्तु बाद में कुछ शर्तों के साथ वह जावद छोड़ कर चला गया। होल्कर राजमाता अहिल्याबाई को मेवाड़ के इस अभियान का पता चला तो उसने तुलाजी सिंधिया एवं श्रीभाऊ के अधीन पाँच हजार सैनिक जावद की ओर भेजे। नाना सदाशिवराव के सैनिक भी इन सैनिकों से आ मिले। मन्दसौर के मार्ग से यह सम्मिलित सेना मेवाड़ की ओर बढ़ी। मेहता मालदास के निर्देशन में बड़ी सादड़ी का राजराणा सुल्तानसिंह, देलवाड़े का राजराणा कल्याणसिंह कानोड़ का रावत जालिमसिंह और सनवाड़ का बाबा दौलतसिंह आदि राजपूत योद्धा भी मुकाबला करने के लिए आगे बढ़े। वि०सं० १८४४ के माघ माह में हड़क्याखाल के पास भीषण भिड़न्त हुई। मालदास ने अपनी सेना सहित मराठों के साथ घमासान संघर्ष किया और अन्त में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ रणांगण में शहीद हो गया।[7] मेहता मालदास के इस

१ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग, (उदयपुर) पृ० ९८६।
२ वही, पृ० ९८७।
३ वही, पृ० ९८७।
४ वीर विनोद, भाग-२, पृ० १७११।
५ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० १०११।
६ शोध पत्रिका, वर्ष २३, अंक १, पृ० ६५-६६।
७ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर), पृ० ९८७-८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पराक्रम की कथाएँ आज भी मेवाड़ में प्रचलित हैं। मालदास अदम्य योद्धा और श्रेष्ठ सेनापति ही नहीं अपितु योग्य प्रशासक भी था।[1] समकालीन कवि किशना आढ़ा कृत 'भीम विलास'[2] तथा पीछोली एवं सीसारमा स्थित सुरह व शिलालेख[3] में मेहता मालदास[4] के कार्यों का उल्लेख उपलब्ध होता है।

मेहता रामसिंह

इतिहास प्रसिद्ध जालसी मेहता की वंशपरम्परा में मेहता ऋषभदास हुआ, मेहता रामसिंह उसी का पुत्र था। यह अपने समय का सर्वाधिक प्रभावशाली, कार्यदक्ष, स्वामीभक्त, नीतिनिपुण, दूरदर्शी एवं बुद्धिमान था। इसके इन्हीं गुणों से प्रसन्न होकर महाराणा भीमसिंह ने वि०सं० १८७५ श्रावणादि में आषाढ़ सुदी ३ को बदनौर परगने का आरणा गाँव उसे जागीर में दिया।[5]

भीमसिंह के काल में मेवाड़ में अँग्रेजों का हस्तक्षेप आरम्भ हो गया था और वि०सं० १८७४ में अंग्रेजों के साथ सन्धि होने के पश्चात् तो वहाँ द्वैध शासन की स्थिति पैदा हो गई, फलस्वरूप मेवाड़ की प्रजा परेशान हो गई। मेवाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान कॉब ने इस परेशानी का मूल कारण उस समय के प्रधान शिवदयाल गलूंड्या की अकुशल व्यवस्था को माना और उसे इस पद से हटा कर वि०सं० १८८५ के भाद्रपद में मेहता रामसिंह को मेवाड़ राज्य का प्रधान बना दिया।[6] रामसिंह ने योग्यतापूर्वक व्यवस्था की, जिसके परिणामस्वरूप मेवाड़ की आर्थिक स्थिति कुछ ही समय में सुधर गई और खिराज के चार लाख रुपये एवं अन्य छोटे-बड़े कर्ज अंग्रेजों को चुका दिये। रामसिंह की इस दक्षता से प्रसन्न होकर महाराणा ने चार गाँव क्रमशः जयनगर, ककरोल, दौलतपुरा और बलदरखा उसे बख्शीस में दिये। महाराणा जवानसिंह (वि०सं० १८८५-९५) के समय में आर्थिक मामलों में सन्देह के कारण कुछ समय के लिए इसे प्रधान के पद से हटा दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि राज्य की आर्थिक स्थिति पहले से भी अधिक खराब हो गई, मजबूर होकर इसे पुनः प्रधान बनाया गया। इसने अंग्रेज सरकार से लिखा-पढ़ी करके कर्ज के दो लाख रुपये माफ करा दिये और चढ़ा हुआ खिराज भी चुका दिया। इस पर इसकी ईमानदारी की काफी प्रशंसा हुई और महाराणा ने इसे सिरोपाव दिया, किन्तु रामसिंह के विरोधी उसके उत्कर्ष को सहन नहीं कर पा रहे थे, वे महाराणा के पास जाकर रामसिंह के विरुद्ध कान भरने लगे। कप्तान कॉब रामसिंह की योग्यता से काफी प्रभावित था, वह जब तक मेवाड़ में रहा, रामसिंह प्रधान बना रहा लेकिन उसके जाने के बाद रामसिंह को इस्तीफा देकर हटना पड़ा।

महाराणा जवानसिंह की वि०सं० १८९५ में मृत्यु होने के बाद उनके उत्तराधिकारी के प्रश्न पर उस समय के प्रधान मेहता शेरसिंह को एक षड़यन्त्र के आरोप में अपने पद से हटना पड़ा और पुनः उसे मेवाड़ का प्रधान बनाया गया। महाराणा भीमसिंह के समय से ही महाराणाओं एवं सामन्त सरदारों के मध्य छटूंद व चाकरी के सम्बन्ध में विवाद चल रहा था और कोई समझौता नहीं हो पा रहा था, रामसिंह ने तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट रॉबिन्सन से एक नया कौलनामा वि०सं० १८९६ में तैयार करा कर लागू कराया। वि०सं० १८९७ में खेरवाड़ा में भीलों की एक सेना संगठित करने में रामसिंह ने काफी उद्योग किया। इसी वर्ष रामसिंह का पुत्र बख्तावरसिंह जब बीमार हुआ तो महाराणा सरदारसिंह (वि०सं० १८९५-९९) उसकी हवेली पर आये एवं पूछताछ की। महाराणा सरूपसिंह (वि०सं० १८९९-१९१८) भी वि०सं० १९०० चैत्र वदी २ को रामसिंह की हवेली पर मेहमान हुए, उसकी मानवृद्धि की, ताजीम दी तथा 'काकाजी' की उपाधि देकर उसे सम्मानित किया। इतना होते हुए भी वि०सं० १९०१ में उसके विरोधियों की शिकायत पर उसे प्रधान पद से पुनः हटा दिया गया और १९०३ में तो एक षड़यन्त्र के आरोप में उसे मेवाड़ छोड़कर ही ब्यावर चले जाना पड़ा। उसके जाने के बाद उसकी जायदाद जब्त कर ली गई तथा उसके बाल-

---

१ टाड—एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान, पृ० ३५०।
२ भीम विलास, छन्द सं० २९२-९७, साहित्य संस्थान, रा०वि० उदयपुर की हस्त प्रति सं० १२३।
३ वीर विनोद, भाग-२, पृ० १७७४-७५ एवं १७७७-७८।
४ उदयपुर स्थित 'मालदास जी की सहरी' का नामकरण इसी मालदास की स्मृति में रखा गया है।
५ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० १३२४।
६ वही, पृ० १०२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बच्चों को भी निकाल दिया गया, यद्यपि बीकानेर महाराजा ने उसे अपने यहाँ ससम्मान आकर बसने का निमन्त्रण दिया, बाद में महाराणा सरूपसिंह ने भी सही स्थिति ज्ञात होने पर पुनः मेवाड़ में आने का बुलावा भेजा, किन्तु उसके पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

सेठ जोरावरमल बापना

पटवा गोत्र के सेठ जोरावरमल बापना के पूर्वजों का मूल निवासस्थान जैसलमेर था। इनके पिता गुमानचन्द थे, जिनके पाँच पुत्र थे, जोरावरमल चतुर्थ पुत्र था। मेवाड़ राज्य के शासन-प्रबन्ध में जोरावरमल यद्यपि किसी पद पर नहीं रहा, यह शुद्ध रूप से व्यापारिक प्रवृत्ति का पुरुष था किन्तु कर्नल टाड की सलाह से महाराणा भीमसिंह ने इसे जब इन्दौर से वि०सं० १८७५ में उदयपुर बुलाया एवं यहाँ दुकान खोलने की स्वीकृति दी तो उसके पश्चात् इसके कार्यों से मेवाड़ की रक्षा में पूर्ण योग मिला। इसकी दुकान से राज्य का सारा खर्च जाता था तथा राज्य की आय इसके यहाँ आकर जमा होती थी।

दुकान खोलने के बाद इसने नये खेड़े बसाए, किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान की एवं चोरों व लुटेरों को राज्य से दण्ड दिलाकर मेवाड़ में शांति व व्यवस्था कायम रखने में पूर्ण सहयोग दिया। जोरावरमल की इन सेवाओं से प्रसन्न होकर वि०सं० १८८३ की ज्येष्ठ सुदी १ को महाराणा ने इसको पालकी व छड़ी का सम्मान दिया, बदनोर परगने का पारसोली गाँव भेंट में दिया एवं 'सेठ' की उपाधि प्रदान की। यह धनाढ्य ही नहीं अपितु राजनीतिज्ञ भी था। तत्कालीन मेवाड़ में प्रधान से भी अधिक सम्मान सेठ जोरावरमल बापना का था।[1]

कोठारी केसरीसिंह

बुद्धि-चातुर्य एवं नीति-निपुणता में प्रवीण कोठारी केसरीसिंह सर्वप्रथम वि०सं० १६०२ में महाराणा सरूपसिंह के समय में 'रावली दुकान' कायम होने पर उसका हाकिम नियुक्त हुआ। इसकी कार्यदक्षता व चतुरता से प्रसन्न होकर वि०सं० १६०८ में महकमा 'दाण' का इसे हाकिम बनाया गया और महाराणाओं के इष्टदेव एकलिंगजी के मन्दिर का सारा प्रबन्ध भी इसे सुपुर्द किया गया।[2] कुछ समय पश्चात् इसे महाराणा का व्यक्तिगत सलाहकार भी नियुक्त किया। वि०सं० १६१६ में इसे नेतावल गाँव जागीर में प्रदान किया, इसकी हवेली पर मेहमान होकर महाराणा ने इसका सम्मान बढ़ाया, मेहता गोकुलचन्द के स्थान पर इसे मेवाड़ का प्रधान बनाया, बोराव गाँव भेंट में दिया और पैरों में पहनने के सोने के तोड़े प्रदान किये।

महाराणा शम्भूसिंह (वि०सं० १६१८-३१) जब तक नाबालिग था, उस स्थिति में कायम रीजेन्सी कौन्सिल का यह भी एक सदस्य था। स्पष्ट वक्ता एवं स्वामीभक्त होने के कारण इस कौन्सिल के सदस्य रहते हुए इसमें किसी भी सरदार या सामन्त को किसी जागीर पर गलत अधिकार नहीं करने दिया। यह तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट को सही सलाह देकर शासन सुधार में भी रुचि लेता था। वि०सं० १६२५ में अकाल पड़ने पर इसने पूरे राज्य में अनाज का व्यवस्थित प्रबन्ध किया। महाराणा ने विभिन्न विभागों की व्यवस्था व देखरेख का जिम्मा भी इसे सौंप रखा था। इसका दत्तक पुत्र कोठारी बलवन्तसिंह को भी महाराणा सज्जनसिंह ने वि०सं० १६३८ में देवस्थान का हाकिम नियुक्त किया। महाराणा फतहसिंह ने वि०सं० १६४५ में इसे महद्राजसभा का सदस्य बनाया और सोने का लंगर प्रदान किया।

मेवाड़ राज्य की रक्षा में उपर्युक्त प्रमुख जैन विभूतियों के अतिरिक्त अनेक अन्य महापुरुषों ने भी अपने जीवन का उत्सर्ग किया है, यहाँ सब का उल्लेख करना सम्भव नहीं है, किन्तु उपरिलिखित वर्णन से ही स्पष्ट है कि जैनियों ने निस्पृह होकर किस तरह मातृभूमि व अपने राज्य की अनुपम व अलौकिक सेवा कर जैन जाति को गौरवान्वित किया।

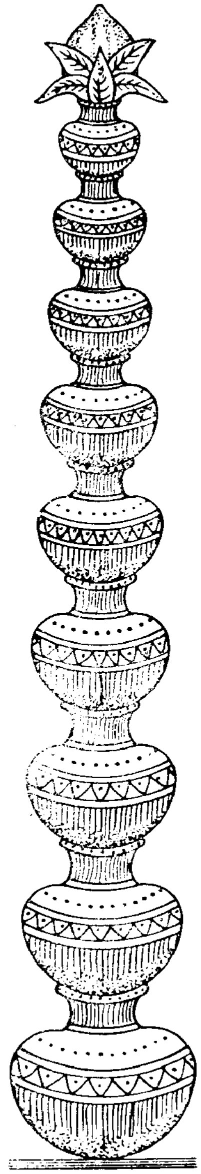

१ ओझा—राजपूताने का इतिहास, द्वितीय भाग (उदयपुर) पृ० १३३१-३३।

२ एकलिंगजी के मन्दिर का काम सम्हालने के बाद जैनधर्मानुयायी होते हुए भी केसरीसिंह व उसके उत्तराधिकारी ने एकलिंगजी को अपना इष्ट देव मानना आरम्भ किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org